।। श्रीहरिः ।।

371

श्रीराधा-माधव-रस-सुधा

(षोडशगीत)

हिन्दी (खड़ी बोली) अनुवादसहित

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

श्रीराधा-माधव-रस-सुधा

[षोडशगीत]

महाभाव-रसराज-वन्दना

दोउ चकोर, दोउ चंद्रमा, दोउ अलि, पंकज दोउ।
दोउ चातक, दोउ मेघ प्रिय, दोउ मछरी, जल दोउ॥ १॥

आस्त्रय-आलंबन दोउ, बिषयालंबन दोउ।
प्रेमी-प्रेमास्पद दोउ, तत्सुख-सुखिया दोउ॥ २॥

लीला-आस्वादन-निरत महाभाव-रसराज।
बितरत रस दोउ दुहुन कौं, रचि बिचित्र सुठि साज॥ ३॥

सहित बिरोधी धर्म-गुन जुगपत नित्य अनंत।
बचनातीत अचिन्त्य अति, सुषमामय श्रीमंत॥ ४॥

श्रीराधा-माधव-चरन बंदौं बारंबार।
एक तत्त्व दो तनु धरैं, नित-रस-पारावार॥ ५॥

१

श्रीकृष्णके प्रेमोद्‌गार—श्रीराधाके प्रति

(राग मालकोस—तीन ताल)

राधिके! तुम मम जीवन-मूल।
अनुपम अमर प्रान-संजीवनि, नहिं कहुँ कोउ समतूल॥ १॥
जस सरीरमें निज-निज थानहिं सबही सोभित अंग।
किंतु प्रान बिनु सबहि ब्यर्थ, नहिं रहत कतहुँ कोउ रंग॥ २॥
तस तुम प्रिये! सबनिके सुखकी एक मात्र आधार।
तुम्हरे बिना नहीं जीवन-रस, जासौं सब कौ प्यार॥ ३॥
तुम्हरे प्राननि सौं अनुप्रानित, तुम्हरे मन मनवान।
तुम्हरौ प्रेम-सिंधु-सीकर लै करौं सबहि रसदान॥ ४॥
तुम्हरे रस-भंडार पुन्य तैं पावत भिच्छुक चून।
तुम सम केवल तुमहि एक हौ, तनिक न मानौ ऊन॥ ५॥
सोऊ अति मरजादा, अति संभ्रम-भय-दैन्य-सँकोच।
नहिं कोउ कतहुँ कबहुँ तुम-सी रसस्वामिनि निस्संकोच॥ ६॥
तुम्हरौ स्वत्व अनंत नित्य, सब भाँति पूर्न अधिकार।
कायब्यूह निज रस-बितरन करवावति परम उदार॥ ७॥
तुम्हरी मधुर रहस्यमई मोहनि माया सौं नित्य।
दच्छिन बाम रसास्वादन हित बनतौ रहूँ निमित्त॥ ८॥

२

श्रीराधाके प्रेमोद्‌गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग रागेश्वरी—ताल दादरा)

हौं तो दासी नित्य तिहारी।
प्राननाथ जीवन-धन मेरे, हौं तुम पै बलिहारी॥ १॥

चाहें तुम अति प्रेम करौ, तन-मन सौं मोहि अपनाऔ।
चाहें द्रोह करौ, त्रासौ, दुख देइ मोहि छिटकाऔ॥ २॥

तुम्हरौ सुख ही है मेरौ सुख, आन न कछु सुख जानौं।
जो तुम सुखी होउ मो दुखमें, अनुपम सुख हौं मानौं॥ ३॥

सुख भोगौं तुम्हरे सुख कारन, और न कछु मन मेरे।
तुमहि सुखी नित देखन चाहौं निसि-दिन साँझ-सबेरे॥ ४॥

तुमहि सुखी देखन हित हौं निज तन-मन कौं सुख देऊँ।
तुमहि समरपन करि अपने कौं नित तव रुचि कौं सेऊँ॥ ५॥

तुम मोहि 'प्रानेस्वरि', 'हृदयेस्वरि', 'कांता' कहि सचु पावौ।
यातैं हौं स्वीकार करौं सब, जद्यपि मन सकुचावौ॥ ६॥

३

श्रीकृष्णके प्रेमोद्‌गार—श्रीराधाके प्रति

(राग भैरवी—तीन ताल)

हे आराध्या राधा! मेरे मनका तुझमें नित्य निवास।
तेरे ही दर्शन कारण मैं करता हूँ गोकुलमें वास॥ १॥

तेरा ही रस-तत्त्व जानना, करना उसका आस्वादन।
इसी हेतु दिन-रात घूमता मैं करता वंशीवादन॥ २॥

इसी हेतु स्नानको जाता, बैठा रहता यमुना-तीर।
तेरी रूपमाधुरीके दर्शनहित रहता चित्त अधीर॥ ३॥

इसी हेतु रहता कदम्बतल, करता तेरा ही नित ध्यान।
सदा तरसता चातककी ज्यौं, रूप-स्वातिका करने पान॥ ४॥

तेरी रूप-शील-गुण-माधुरि मधुर नित्य लेती चित चोर।
प्रेमगान करता नित तेरा, रहता उसमें सदा विभोर॥ ५॥

४

श्रीराधाके प्रेमोद्‌गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग भैरवी—तीन ताल)

मेरी इस विनीत विनतीको सुन लो, हे व्रजराजकुमार!
युग-युग, जन्म-जन्ममें मेरे तुम ही बनो जीवनाधार॥ १॥

पद-पंकज-परागकी मैं नित अलिनी बनी रहूँ, नँदलाल!
लिपटी रहूँ सदा तुमसे मैं, कनकलता ज्यों तरुण तमाल॥ २॥

दासी मैं हो चुकी सदाको, अर्पणकर चरणोंमें प्राण।
प्रेम-दामसे बँध चरणोंमें, प्राण हो गये धन्य महान॥ ३॥

देख लिया, त्रिभुवनमें बिना तुम्हारे और कौन मेरा।
कौन पूछता है 'राधा' कह, किसको राधाने हेरा॥ ४॥

इस कुल, उस कुल—दोनों कुल, गोकुलमें मेरा अपना कौन?
अरुण मृदुल पद-कमलोंकी ले शरण अनन्य, गयी हो मौन॥ ५॥

देखे बिना तुम्हें पलभर भी मुझे नहीं पड़ता है चैन।
तुम ही प्राणनाथ नित मेरे, किसे सुनाऊँ मनके बैन॥ ६॥

रूप-शील-गुणहीन समझकर कितना ही दुतकारो तुम।
चरणधूलि मैं चरणोंमें ही लगी रहूँगी, बस, हरदम॥ ७॥

५

श्रीकृष्णके प्रेमोद्‌गार—श्रीराधाके प्रति

(राग परज—तीन ताल)

हे बृषभानुराजनन्दिनि! हे अतुल प्रेम-रस-सुधा-निधान!
गाय चराता वन-वन भटकूँ, क्या समझूँ मैं प्रेम-विधान॥ १॥

ग्वाल-बालकोंके सँग डोलूँ, खेलूँ सदा गँवारू खेल।
प्रेम-सुधा-सरिता तुमसे मुझ तप्त धूलका कैसा मेल?॥ २॥

तुम स्वामिनि अनुरागिणि! जब देती हो प्रेमभरे दर्शन।
तब अति सुख पाता मैं, मुझपर बढ़ता अमित तुम्हारा ऋण॥ ३॥

कैसे ऋणका शोध करूँ मैं, नित्य प्रेम-धनका कंगाल।
तुम्हीं दयाकर प्रेमदान दे, मुझको करती रहो निहाल॥ ४॥

६

श्रीराधाके प्रेमोद्‌गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग परज—तीन ताल)

सुन्दर श्याम कमल-दल-लोचन, दुखमोचन व्रजराजकिशोर!
देखूँ तुम्हें निरन्तर हिय-मन्दिरमें, हे मेरे चितचोर!॥ १॥

लोक-मान-कुल-मर्यादाके शैल सभी कर चकनाचूर।
रक्खूँ तुम्हें समीप सदा मैं, करूँ न पलक तनिक भर दूर॥ २॥

पर मैं अति गँवार ग्वालिनि, गुणरहित, कलंकी, सदा कुरूप।
तुम नागर, गुण-आगर, अतिशय कुलभूषण, सौन्दर्य-स्वरूप॥ ३॥

मैं रस-ज्ञान-रहित, रसवर्जित, तुम रसनिपुण, रसिक-सिरताज।
इतनेपर भी, दयासिन्धु! तुम मेरे उरमें रहे विराज॥ ४॥

७

श्रीकृष्णके प्रेमोद्‌गार—श्रीराधाके प्रति

(राग भैरवी तर्ज—तीन ताल)

हे प्रियतमे राधिके! तेरी महिमा अनुपम, अकथ, अनन्त।
युग-युगसे गाता मैं अविरत, नहीं कहीं भी पाता अन्त॥ १॥

सुधानन्द बरसाता हियमें तेरा मधुर वचन अनमोल।
बिका सदाके लिये मधुर दृग-कमल, कुटिल भ्रुकुटीके मोल॥ २॥

जपता तेरा नाम मधुर अनुपम, मुरलीमें नित्य ललाम।
नित अतृप्त नयनोंसे तेरा रूप देखता अति अभिराम॥ ३॥

कहीं न मिला प्रेम शुचि ऐसा, कहीं न पूरी मनकी आश।
एक तुझीको पाया मैंने जिसने किया पूर्ण अभिलाष॥ ४॥

नित्य तृप्त निष्काम नित्यमें मधुर अतृप्ति, मधुरतम काम।
तेरे दिव्य प्रेमका है यह जादूभरा मधुर परिणाम॥ ५॥

८

श्रीराधाके प्रेमोद्‌गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग भैरवी तर्ज—तीन ताल)

सदा सोचती रहती हूँ मैं, क्या दूँ तुमको, जीवनधन!
जो धन देना तुम्हें चाहती, तुम ही हो वह मेरा धन॥ १॥

तुम ही मेरे प्राणप्रिय हो, प्रियतम! सदा तुम्हारी मैं।
वस्तु तुम्हारी तुमको देते पल-पल हूँ बलिहारी मैं॥ २॥

प्यारे! तुम्हें सुनाऊँ कैसे अपने मनकी सहित विवेक।
अन्योंके अनेक, पर मेरे तो तुम ही हो, प्रियतम! एक॥ ३॥

मेरे सभी साधनोंकी, बस एकमात्र हो तुम ही सिद्धि।
तुम ही प्राणनाथ हो, बस, तुम ही हो मेरी नित्य समृद्धि॥ ४॥

तन-धन-जनका बन्धन टूटा, छूटा भोग-मोक्षका रोग।
धन्य हुई मैं, प्रियतम! पाकर एक तुम्हारा प्रिय संयोग॥ ५॥

९

श्रीकृष्णके प्रेमोद्‌गार—श्रीराधाके प्रति

(राग गूजरी—ताल कहरवा)

राधे! हे प्रियतमे! प्राण-प्रतिमे! हे मेरी जीवन-मूल!
पल भर भी न कभी रह सकता, प्रिये! मधुर मैं तुमको भूल॥ १॥

श्वास-श्वासमें तेरी स्मृतिका नित्य पवित्र स्त्रोत बहता।
रोम-रोम अति पुलकित तेरा आलिंगन करता रहता॥ २॥

नेत्र देखते तुझे नित्य ही, सुनते शब्द मधुर यह कान।
नासा अंग-सुगन्ध सूँघती, रसना अधर-सुधा-रस-पान॥ ३॥

अंग-अंग शुचि पाते नित ही तेरा प्यारा अंग-स्पर्श।
नित्य नवीन प्रेम-रस बढ़ता, नित्य नवीन हृदयमें हर्ष॥ ४॥

१०

श्रीराधाके प्रेमोद्‌गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग गूजरी—ताल कहरवा)

मेरे धन-जन-जीवन तुम ही, तुम ही तन-मन, तुम सब धर्म।
तुम ही मेरे सकल सुख सदन, प्रिय निज जन, प्राणोंके मर्म॥ १॥
तुम्हीं एक, बस, आवश्यकता; तुम ही एकमात्र हो पूर्ति।
तुम्हीं एक सब काल, सभी विधि, हो उपास्य शुचि सुन्दर मूर्ति॥ २॥
तुम ही काम-धाम सब मेरे, एकमात्र तुम लक्ष्य महान।
आठों पहर बसे रहते तुम मम मन-मन्दिरमें भगवान*॥ ३॥
सभी इन्द्रियोंको तुम शुचितम करते नित्य स्पर्श-सुख-दान।
बाह्याभ्यन्तर नित्य निरन्तर तुम छेड़े रहते निज तान॥ ४॥
कभी नहीं तुम ओझल होते, कभी नहीं तजते संयोग।
घुले-मिले रहते करवाते-करते निर्मल रस-सम्भोग॥ ५॥
पर इसमें न कभी मतलब कुछ मेरा तुमसे रहता भिन्न।
हुए सभी संकल्प भंग मैं-मेरेके समूल तरु छिन्न॥ ६॥
भोक्ता, भोग्य—सभी कुछ तुम हो, तुम ही स्वयं बने हो भोग।
मेरा मन बन सभी तुम्हीं हो अनुभव करते योग-वियोग॥ ७॥

---

* (दूसरा पाठ) आठों पहर सरसते रहते तुम मन सर-वरमें रसवान।

११

श्रीकृष्णके प्रेमोद्‌गार—श्रीराधाके प्रति

(राग शिवरंजनी—तीन ताल)

मेरा तन-मन सब तेरा ही, तू ही सदा स्वामिनी एक।
अन्योंका उपभोग्य न भोक्ता है कदापि, यह सच्ची टेक॥ १॥

तन समीप रहता न स्थूलतः, पर जो मेरा सूक्ष्म शरीर।
क्षणभर भी न विलग रह पाता, हो उठता अत्यन्त अधीर॥ २॥

रहता सदा जुड़ा तुझसे ही, अतः बसा तेरे पद-प्रान्त।
तू ही उसकी एकमात्र जीवनकी जीवन है निर्भ्रान्त॥ ३॥

हुआ न होगा अन्य किसीका उसपर कभी तनिक अधिकार।
नहीं किसीको सुख देगा, लेगा न किसीसे किसी प्रकार॥ ४॥

यदि वह कभी किसीसे किंचित् दिखता करता-पाता प्यार।
वह सब तेरे ही रसका, बस, है केवल पवित्र विस्तार॥ ५॥

कह सकती तू मुझे सभी कुछ, मैं तो नित तेरे आधीन।
पर न मानना कभी अन्यथा, कभी न कहना निजको दीन॥ ६॥

इतनेपर भी मैं तेरे मनकी न कभी हूँ कर पाता।
अतः बना रहता हूँ सतत तुझको दुखका ही दाता॥ ७॥

अपनी ओर देख तू मेरे सब अपराधोंको जा भूल।
करती रह कृतार्थ मुझको, दे पावन पद-पंकजकी धूल॥ ८॥

१२

श्रीराधाके प्रेमोद्‌गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग शिवरंजनी—तीन ताल)

तुमसे सदा लिया ही मैंने, लेती-लेती थकी नहीं।
अमित प्रेम-सौभाग्य मिला, पर मैं कुछ भी दे सकी नहीं॥ १॥

मेरी त्रुटि, मेरे दोषोंको तुमने देखा नहीं कभी।
दिया सदा, देते न थके तुम, दे डाला निज प्यार सभी॥ २॥

तब भी कहते—'दे न सका मैं तुमको कुछ भी, हे प्यारी!
तुम-सी शील-गुणवती तुम ही, मैं तुम पर हूँ बलिहारी'॥ ३॥

क्या मैं कहूँ प्राणप्रियतमसे, देख लजाती अपनी ओर।
मेरी हर करनीमें ही तुम प्रेम देखते, नन्दकिशोर!॥ ४॥

१३

श्रीकृष्णके प्रेमोद्‌गार—श्रीराधाके प्रति

(राग वागेश्री—तीन ताल)

राधे! तू ही चित्तरंजनी, तू ही चेतनता मेरी।
तू ही नित्य आतमा मेरी, मैं हूँ, बस, आत्मा तेरी॥ १॥

तेरे जीवनसे जीवन है, तेरे प्राणोंसे हैं प्राण।
तू ही मन, मति, चक्षु, कर्ण, त्वक्, रसना, तू ही इन्द्रिय-घ्राण॥ २॥

तू ही स्थूल-सूक्ष्म इन्द्रियके विषय सभी मेरे सुखरूप।
तू ही मैं, मैं ही तू, बस, तेरा-मेरा सम्बन्ध अनूप॥ ३॥

तेरे बिना न मैं हूँ, मेरे बिना न तू रखती अस्तित्व।
अविनाभाव विलक्षण यह सम्बन्ध, यही, बस, जीवन-तत्त्व॥ ४॥

श्रीराधाके प्रेमोद्‌गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग वागेश्री—तीन ताल)

तुम अनन्त सौन्दर्य-सुधा-निधि, तुममें सब माधुर्य अनन्त।
तुम अनन्त ऐश्वर्य-महोदधि, तुममें सब शुचि शौर्य अनन्त॥ १॥

सकल दिव्य सद्‌गुण-सागर तुम लहराते सब ओर अनन्त।
सकल दिव्य रस निधि तुम अनुपम, पूर्ण रसिक, रसरूप अनन्त॥ २॥

इस प्रकार जो सभी गुणोंमें, रसमें अमित, असीम, अपार।
नहीं किसी गुण-रसकी उसे अपेक्षा कुछ भी, किसी प्रकार॥ ३॥

फिर, मैं तो गुणरहित सर्वथा, कुत्सित-गति सब भाँति, गँवार।
सुन्दरता-मधुरता-रहित, कर्कश, कुरूप, अति दोषागार॥ ४॥

नहीं वस्तु कुछ भी ऐसी, जिससे तुमको मैं दूँ रस-दान।
जिससे तुम्हें रिझाऊँ, जिससे करूँ तुम्हारा पूजन-मान॥ ५॥

एक वस्तु मुझमें अनन्य, आत्यन्तिक है विरहित उपमान।
'मुझे सदा प्रिय लगते तुम', यह तुच्छ किंतु अत्यन्त महान॥ ६॥

रीझ गये तुम इसी एकपर, किया मुझे तुमने स्वीकार।
दिया स्वयं आकर अपनेको, किया न कुछ भी सोच-विचार॥ ७॥

भूल उच्चता, भगवत्ता सब, सत्ताका सारा अधिकार।
मुझ नगण्यसे मिले तुच्छ बन, स्वयं छोड़ संकोच-सँभार॥ ८ ॥

मानो अति आतुर मिलनेको, मानो हो अत्यन्त अधीर।
तत्त्वरूपता भूल सभी, नेत्रोंसे लगे बहाने नीर॥ ९ ॥

हो व्याकुल, भर रस अगाध, आकर शुचि रस-सरिताके तीर।
करने लगे परम अवगाहन, तोड़ सभी मर्यादा धीर॥ १० ॥

बढ़ी अमित, उमड़ी रस-सरिता पावन, छायी चारों ओर।
डूबे सभी भेद उसमें, फिर रहा कहीं भी ओर न छोर॥ ११ ॥

प्रेमी, प्रेम, परम प्रेमास्पद—नहीं ज्ञान कुछ, हुए विभोर।
राधा प्यारी हूँ मैं, या हो केवल तुम प्रिय नन्दकिशोर॥ १२ ॥

१५

श्रीकृष्णके प्रेमोद्‌गार—श्रीराधाके प्रति

(राग भैरवी—तीन ताल)

राधा! तुम-सी तुम्हीं एक हो, नहीं कहीं भी उपमा और।
लहराता अत्यन्त सुधा-रस-सागर, जिसका ओर न छोर॥ १॥

मैं नित रहता डूबा उसमें, नहीं कभी ऊपर आता।
कभी तुम्हारी ही इच्छासे हूँ लहरोंमें लहराता॥ २॥

पर वे लहरें भी गाती हैं एक तुम्हारा रम्य महत्त्व।
उनका सब सौन्दर्य और माधुर्य, तुम्हारा ही है स्वत्व॥ ३॥

तो भी उनके बाह्य रूपमें ही, बस, मैं हूँ लहराता।
केवल तुम्हें सुखी करनेको सहज कभी ऊपर आता॥ ४॥

एकच्छत्र स्वामिनि तुम मेरी अनुकम्पा अति बरसाती।
रखकर सदा मुझे संनिधिमें जीवनके क्षण सरसाती॥ ५॥

अमित नेत्रसे गुण-दर्शन कर, सदा सराहा ही करती।
सदा बढ़ाती सुख अनुपम, उल्लास अमित उरमें भरती॥ ६॥

सदा, सदा मैं सदा तुम्हारा, नहीं कदा कोई भी अन्य—
कहीं जरा भी कर पाता अधिकार दासपर सदा अनन्य॥ ७॥

जैसे मुझे नचाओगी तुम, वैसे नित्य करूँगा नृत्य।
यही धर्म है, सहज प्रकृति यह, यही एक स्वाभाविक कृत्य॥ ८॥

श्रीराधाके प्रेमोद्‌गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग भैरवी तर्ज—तीन ताल)

तुम हो यन्त्री, मैं यन्त्र; काठकी पुतली मैं, तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ, कहलाओ, मुझे नचाओ निज इच्छानुसार॥ १॥

मैं करूँ, कहूँ, नाचूँ नित ही परतन्त्र; न कोई अहंकार।
मन मौन—नहीं, मन ही न पृथक; मैं अकल खिलौना, तुम खिलार॥ २॥

क्या करूँ, नहीं क्या करूँ—करूँ इसका मैं कैसे कुछ विचार।
तुम करो सदा स्वच्छन्द, सुखी जो करे तुम्हें, सो प्रिय विहार॥ ३॥

अनबोल, नित्य निष्क्रिय, स्पन्दनसे रहित, सदा मैं निर्विकार।
तुम जब जो चाहो, करो, सदा, बेशर्त, न कोई भी करार॥ ४॥

मरना-जीना मेरा कैसा, कैसा मेरा मानापमान।
हैं सभी तुम्हारे ही, प्रियतम! ये खेल नित्य सुखमय महान॥ ५॥

कर दिया क्रीड़नक बना मुझे निज करका तुमने अति निहाल।
यह भी कैसे मानूँ-जानूँ, जानो तुम ही निज हाल-चाल॥ ६॥

इतना मैं जो यह बोल गयी, तुम जान रहे—है कहाँ कौन।
तुम ही बोले भर सुर मुझमें मुखरा-से, मैं तो शून्य मौन॥ ७॥

पुष्पिका

महाभाव-रसराजके मधुर मनोहर भाव।
दिव्य, मधुरतम, रागमय, दैन्य विभूषित चाव॥ १॥

दोनों दोनोंके लिये सहज सभी कर त्याग।
सुखद परस्पर बन रहे, छलक रहा अनुराग॥ २॥

दोनों दोनोंके सदा प्रेमी-प्रेष्ठ महान।
नित्य, अनन्त, अचिन्त्य, शुचि, अनिर्वाच्य रस खान॥ ३॥

सुख-दुख दोनों ही सुखद, प्रियतम-सुखके हेतु।
अन्य सभी टूटे सहज मिथ्या निजसुख-सेतु॥ ४॥

राधा-माधव-प्रेम-रस वाचा-चित्त-अतीत।
करते शाखाचन्द्र-से इंगित सोलह गीत॥ ५॥

श्रीराधाकृष्णचरणकमलेभ्योऽर्पितम्।